आपराधिक पुनरीक्षण

न्यायमूर्ति जिन्द्रा लाल के समक्ष।

दाता राम - याचिकाकर्ता

बनाम

वेद प्रकाश चोपड़ा, - उत्तरदाता।

1968 का आपराधिक पुनरीक्षण क्रमांक 75-आर

1 मई, 1969

दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का V) - धारा 197 - दंड संहिता (1860 का XLV) - धारा 19 - पंजाब सहकारी समिति अधिनियम (1961 का XXV) - धारा 84 - चुनाव सहकारी समिति की प्रबंध समिति में - नामांकन पत्रों की जांच के लिए नियुक्त निर्वाचन अधिकारी ऐसे निर्वाचन के लिए उम्मीदवार - ऐसा अधिकारी - चाहे वह 'न्यायाधीश' हो - उसके अभियोजन के लिए मंजूरी - यदि आवश्यक हो - एक मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में किया गया अपराध - ऐसा मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के समय ऐसा नहीं करता है - न्यायालय - क्या मंजूरी के बिना अपराध का संज्ञान ले सकता है।

अभिनिर्धारित कि पंजाब सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1961 के तहत आयोजित होने वाले सहकारी समिति की प्रबंध समिति के चुनाव के संबंध में नामांकन पत्रों की जांच के लिए सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त एक निर्वाचन अधिकारी भारतीय दंड संहिता की धारा **19** में परिभाषित 'न्यायाधीश' नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 उन्हें संरक्षण प्रदान नहीं करती है यदि वह नामांकन पत्रों की जांच करते समय कोई अपराध करते हैं। उस समय वह जो कार्य करता है, वह न तो सिविल में होता है और न ही आपराधिक कार्यवाही में होता है। वह इस मामले में कोई निश्चित निर्णय भी नहीं देता है। बस आवश्यकता इस बात की है कि वह नामांकन पत्रों को देखें और देखें कि कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए किसी भी अयोग्यता के अधीन नहीं है। इसलिए निर्वाचन अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए कोई अपराध करने के लिए उनके अभियोजन के लिए कोई मंजूरी आवश्यक नहीं है। (पैरा 1, 6 और 10)

यह माना गया है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत किसी अदालत के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए अपराध का संज्ञान लेने के लिए कोई पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं है, यदि वह शिकायत किए जाने के समय मजिस्ट्रेट के रूप में नहीं रहता है या अदालत में पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। यानी, किए गए अपराध का संज्ञान लेने के समय। (पैरा 11)

श्री जे. एस. मंदर, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, अंबाला द्वारा दिनांक *22* नवम्बर, 1967 के आवेदन को खारिज करते हुए जगाधरी के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट श्री बी. एल. गुप्ता के आदेश में संशोधन के लिए 21 मार्च, 1968 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा *438* के तहत रिपोर्ट किया गया मामला। आरोपी द्वारा आईपीसी की धारा 500 और *166* के तहत उसके खिलाफ दायर शिकायत को आरोपमुक्त करने और खारिज करने के लिए दायर किया गया है, और आदेश दिया गया है कि मामला गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ेगा।

जी.एस. ग्रेवाल के साथ पी.एस. मान याचिकाकर्ता की ओर से, वकील।

सी.एल. लखनपाल एडवोकेट, मुनीश्वर पुरी एडवोकेट हरियाणा के एडवोकेट जनरल की ओर से, प्रतिवादी की ओर से ।

आदेश

इस मामले को अंबाला के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने इस सिफारिश के साथ रिपोर्ट किया है कि 1967 के केस नंबर 183/2 में जगाधरी के प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 22 नवंबर, 1967 के आदेश को रद्द किया जाए और वर्तमान प्रतिवादी श्री वेद प्रकाश चोपड़ा, एडवोकेट, जगाधरी, द्वारा शिकायत को बर्खास्त किया जाए।

(2) जिन तथ्यों पर यह सिफारिश की गई है, उन्हें विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा बहुत स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है और इसे पूरी तरह से निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में, याचिकाकर्ता। श्री दाता राम, निरीक्षक। सहकारी समितियां पंजाब सहकारी समिति अधिनियम, 1961 के तहत होने वाले नाहरपुर गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड, नाहरपुर की प्रबंध समिति के चुनाव के संबंध में नामांकन पत्रों की जांच के लिए रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों हरियाणा द्वारा गन्ना मॉडल टाउन, यमुनानगर को रिटर्निंग अधिकारी नियुक्त किया गया था। 23 अगस्त, 1967 को संवीक्षा की जा रही थी और एक उम्मीदवार मदन लाल ने दूसरे उम्मीदवार दोस्ती के नामांकन पत्र को खारिज कराने के इच्छुक होने के कारण प्रतिवादी श्री वेद प्रकाश चोपड़ा को अपने वकील के रूप में नियुक्त किया। दोस्ती ने एक गवाह पेश किया था और प्रतिवादी-वकील ने उससे जिरह शुरू कर दी थी, जब याचिकाकर्ता को किसी ने बुलाया था और उस कमरे में लौटने पर जहां जांच की जा रही थी, उसने प्रतिवादी को भाग लेने की अनुमति देने से इनकार कर दिया, यह दावा करते हुए कि एक उम्मीदवार का प्रतिनिधित्व करने के लिए वकील का कोई प्रावधान नहीं था। याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उसने प्रतिवादी से कहा कि वह अपना काम नहीं जानता और याचिकाकर्ता को गुमराह कर रहा है। उन्होंने डूम सिंह के उस बयान को भी खारिज कर दिया, जिसे लिखकर लिख दिया गया था। प्रतिवादी ने वर्तमान याचिकाकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 166 और 500 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत की, जिसने आपत्ति जताई कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी की कमी और पंजाब सहकारी समिति अधिनियम की धारा 84 के मद्देनजर शिकायत को खारिज कर दिया जाना चाहिए। विद्वान मजिस्ट्रेट याचिकाकर्ता के इस तर्क से सहमत नहीं हुए और माना कि उठाई गई आपत्तियों पर शिकायत को खारिज करने का कोई आधार नहीं था। याचिकाकर्ता संशोधन में चला गया और एकमात्र आधार जिस पर इस संशोधन की स्वीकृति के लिए सिफारिश की गई है, वह यह है कि जब घटना हुई तो याचिकाकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 19 के अर्थ के भीतर एक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहा था, और एक अदालत धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के मद्देनजर शिकायत का संज्ञान नहीं ले सकती थी। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने *एस.सी. अब्बॉय नायडू बनाम कन्नियप्पा चेट्टियार*[1], को अपने विचार के समर्थन में रखा।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 में अन्य बातों के साथ-साथ किसी ऐसे व्यक्ति को, जो भारतीय दंड संहिता की धारा *19* के अर्थ में न्यायाधीश है, सुरक्षा प्रदान करता है, जब उस पर अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते हुए या कार्य करने का इरादा रखते हुए उसके द्वारा किए गए किसी कथित अपराध का आरोप लगाया जाता है और यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।

(4) भारतीय दंड संहिता की धारा 19 में प्रावधान है कि 'न्यायाधीश' शब्द न केवल प्रत्येक व्यक्ति को दर्शाता है जिसे आधिकारिक तौर पर न्यायाधीश के रूप में नामित किया गया है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को भी, जिसे कानून द्वारा किसी भी कानूनी कार्यवाही में, नागरिक या आपराधिक, एक निश्चित निर्णय, या एक निर्णय देने का अधिकार है, जिसके खिलाफ अपील नहीं की जाती है, निश्चित होगा, या एक निर्णय, जिसके खिलाफ अपील नहीं की जाती है, या एक निर्णय है, यदि किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा पुष्टि की जाती है, तो निश्चित होगा।

(5) भारतीय दंड संहिता की धारा 19 में 'न्यायाधीश' शब्द की परिभाषा को देखते हुए यह कहना कठिन है कि याचिकाकर्ता जब नामांकन पत्रों की जांच कर रहा था तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहा था।

(6) यह मानना संभव है कि शब्द के व्यापक अर्थ ों में, याचिकाकर्ता कानूनी कार्यवाही में कार्य कर रहा हो सकता है, अगर कानूनी कार्यवाही का मतलब किसी कानून के अधिकार के तहत कार्य करना है। हालांकि, यह कहना संभव नहीं है कि याचिकाकर्ता संबंधित समय में जो कार्य कर रहा था वह सिविल या आपराधिक कार्यवाही में था। न ही यह मानना संभव है कि वह इस मामले में एक निश्चित निर्णय देने वाला था।

---

1 A.I.R. 1929 Madras 175.

(7) प्रतिवादी-शिकायतकर्ता के वकील ने मुझे पंजाब सहकारी समिति अधिनियम, 1961 और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के बारे में बताया।

(8) अधिनियम की धारा 26 में कहा गया है कि सहकारी समिति की समिति के सदस्यों को निर्धारित तरीके से चुना जाएगा और कोई भी व्यक्ति तब तक निर्वाचित नहीं होगा जब तक कि वह सोसायटी का शेयरधारक न हो। पंजाब सहकारी समिति नियम, 1963 के नियम 23 में प्रावधान है कि सहकारी समिति की समिति के सदस्यों का चुनाव परिशिष्ट 'सी' में निर्धारित नियमों के अनुसार किया जाएगा। नियम 25 समिति की सदस्यता के लिए कुछ अयोग्यताओं को निर्धारित करता है। परिशिष्ट 'सी' के नियम 2 में प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति समिति के सदस्य के रूप में चुनाव के लिए पात्र नहीं होगा यदि वह नियम 25 में उल्लिखित किसी भी अयोग्यता के अधीन है। परिशिष्ट 'सी' के नियम 3 (5) में प्रावधान है कि "नामांकन पत्रों की जांच निर्वाचन अधिकारी द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट तारीख को की जाएगी। चुनाव के लिए वैध रूप से नामांकित उम्मीदवारों की सूची, जहां आवश्यक हो, आम बैठक आयोजित होने से चार दिन पहले घोषित की जाएगी। रजिस्ट्रार सामान्य या विशेष आदेश से किसी भी सहकारी समिति या सहकारी समितियों के किसी भी वर्ग को इस उप-नियम से छूट दे सकता है।

(9) इन प्रावधानों के मद्देनजर, प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा यह आग्रह किया गया है कि जांच करने, तर्क सुनने, शपथ पर सबूत लेने या एक निश्चित निर्णय देने के लिए कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं है। इसके लिए केवल यह आवश्यक है कि रिटर्निंग अधिकारी को नामांकन पत्रों को देखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उम्मीदवार नियम 25 में उल्लिखित किसी भी अयोग्यता के अधीन नहीं है। "कार्यवाही" और "निर्णय" शब्द भारतीय दंड संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता में परिभाषित नहीं हैं, लेकिन नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (9) "निर्णय" को डिक्री या आदेश के आधार पर न्यायाधीश द्वारा दिए गए बयान के रूप में परिभाषित करती है।

(10) स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश, तीसरे संस्करण में, खंड 2 'निर्णय' को रिकॉर्ड में निहित मामले पर न्यायालय द्वारा सुनाए गए कानून की सजा कहा जाता है और निर्णय एक कार्रवाई में प्राप्त किया जाना चाहिए। उसी शब्दकोश के खंड I में 'कार्रवाई' को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ व्यक्तिगत अधिकार की वसूली या व्यक्तिगत गलत के निवारण के लिए सिविल कोर्ट में मुकदमा है। न्यायालय द्वारा दायर मुकदमों का अपने उचित कानूनी अर्थों में समावेशी। इसलिए, इसका मतलब यह होगा कि किसी कानून के तहत कार्यवाही में किसी अधिकारी द्वारा पारित कोई भी आदेश भारतीय दंड संहिता की धारा 19 द्वारा विचार किया गया निर्णय नहीं है। इसे एक अलग अर्थ देने का मतलब यह होगा कि कोई भी अधिकारी जो किसी भी मामले का फैसला कर रहा है, जिसे तय करने के लिए उसे कानून द्वारा सौंपा गया है, वह भारतीय दंड संहिता की धारा 19 में परिभाषित न्यायाधीश होगा, और उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 द्वारा विचार किए गए सभी संरक्षण प्राप्त होंगे। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 19 द्वारा परिभाषित न्यायाधीश नहीं माना जा सकता है, और धारा 197, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, उसे संरक्षित नहीं करेगी।

(11) प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा आगे आग्रह किया गया था कि एक न्यायाधीश को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत केवल तब तक संरक्षित किया जाता है जब तक कि वह एक न्यायाधीश है क्योंकि उसके न्यायाधीश बनने के बाद, उसे सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। इस प्रस्ताव के लिए उन्होंने *केशवलाल मोहनलाल शाह बनाम बॉम्बे राज्य*[2], पर भरोसा किया । जहां यह माना गया था कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत किसी अदालत के लिए अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करते समय मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए अपराध का संज्ञान लेने के लिए कोई पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं है, यदि वह शिकायत किए जाने के समय मजिस्ट्रेट नहीं रहा था या अदालत में पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, यानी, किए गए अपराध का संज्ञान लेने के समय। इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि जब प्रतिवादी द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत की गई थी, तो याचिकाकर्ता पहले ही अपना निर्णय दे चुका था और अब न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर रहा था। प्रतिवादी की ओर से आग्रह किए गए इस अंतिम बिंदु में भी दम प्रतीत होता है।

---

2 A.I.R. 1961 S.C. 1395.

(12) अब यह उस फैसले से निपटना बाकी है, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा किया है, जिसके आधार पर विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा सिफारिश की गई है। मामले का फैसला करने वाले विद्वान न्यायाधीश एस. सी. अब्बॉय नायडू बनाम कन्नियप्पा चेट्टियार (1) ने खुद को भारतीय दंड संहिता की धारा 19 तक सीमित रखते हुए कहा कि कानूनी कार्यवाही ऐसी कार्यवाही है जिसमें एक निर्णय दिया जा सकता है या दिया जाना चाहिए, एक निर्णय मनमाना निर्णय नहीं है, बल्कि न्यायिक रूप से किया गया निर्णय है। विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा कि उनकी राय में 'कानूनी कार्यवाही' का अर्थ कानून द्वारा विनियमित या निर्धारित कार्यवाही है जिसमें न्यायिक निर्णय दिया जा सकता है या दिया जाना चाहिए। यह देखना मुश्किल है कि एक निर्वाचन अधिकारी का यह निर्णय, जिसका कर्तव्य पंजाब सहकारी समिति अधिनियम, 1961 के तहत नामांकन पत्रों की जांच करना था, को सिविल कार्यवाही में निर्णय या न्यायिक निर्णय कैसे कहा जा सकता है जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। नतीजतन, मैं विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की सिफारिश को स्वीकार करने और इस संशोधन को खारिज करने से इनकार करता हूं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के समिति उपयोग कि लिए है ताकि यह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। सभी व्यावहारिक और आपराधिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा।

हिमांशु आर्य
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
हरियाणा